राजनीतिक मुन्नाभाईयों की गाँधीगिरी

◄डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी

अक्टूबर आता है, तो देश में चरखे निकल आते हैं।

अक्टूबर के महीने में राजनीतिज्ञों को चरखा लगता है, जैसे नवम्बर–दिसम्बर में आदमी को शॉल या स्वेटर लगता है। गाँधी जयंती पर इस बार भी यही हुआ। मैंने टी.वी. पर स्वयं देखा। चन्द खुर्राट लोग बैठकर गाँधीजी की समाधि के सामने रामधुन गा रहे थे और गोदी में धरा चरखा चलाने की कोशिश कर रहे थे।

चरखे को लेकर एक अजीब ऊहापोह की स्थिति बनी हुई है हमारे राजनीतिक मित्रों के बीच। हर पार्टी में, परन्तु विशेष तौर पर कांग्रेस में क्योंकि कांग्रेसियों को अभी भी यह भ्रम है, या वे ऐसा भ्रम खड़ा करना चाहते हैं कि गांधीजी इसी कांग्रेस में चवन्निया मेम्बर थे और इसी रिश्ते से चरखे के प्रति उनके कुछ कर्त्तव्य भी बनते हैं। मसलन यह कि वे चरखे को घूरे पर नहीं फेंक सकते, चाहे दिल में ऐसा करने की कैसी भी तीव्र इच्छा हो। मन है कि कहता है और मानता भी है कि चरखा आज के युग में अप्रासांगिक हो गया है और जमाना सफारी सूट पहनकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, विश्व बैंक से कर्जे तथा विदेशी तकनीक आदि की राजनीति करने का है। परंतु एक डर है जो सतत् बना रहता है। डर की बात यह है कि इस देश में गाँधी अभी भी प्रासंगिक बना हुआ है, जनता के बीच। गाँधी से लोग अभी भी जुड़ाव महसूस करते हैं। गाँधी का नाम अभी भी वोट दिलवा सकता है। इन्हीं कारणों से गाँधी को एकदम लपेटकर नहीं फेंक सकते। बीच–बीच में निकालना पड़ता है तथा झाड़ू–पोंछकर, गाँधी जयन्ती या ऐसे ही अन्य राष्ट्रीय पर्वों पर जनता को 'गाँधी–गाँधी' जपकर दिखाना पड़ता है। बताना पड़ता है कि हम चाहे विदेशी पूँजी प्राप्त करने के पागल लालच में स्वदेशी शब्द को अश्लील घोषित कर चुके हों, चाहे हमारी सरकार की सरकारी मशीनरी की हिंसा देखकर अच्छे–अच्छे गाँधीवादी की रूह काँप जाती हो, और

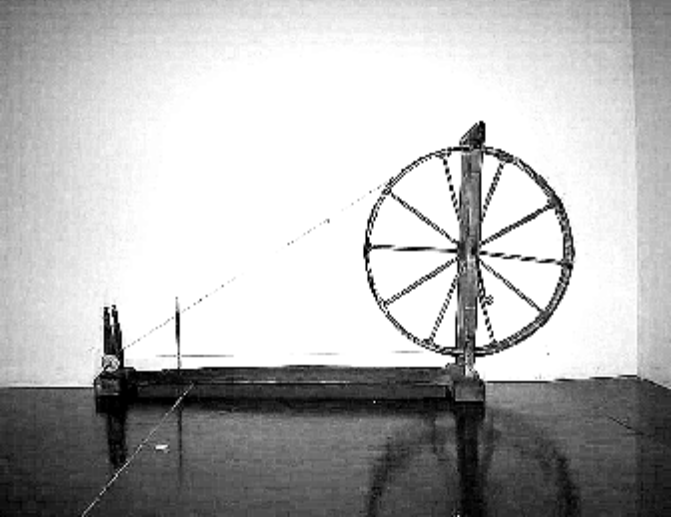

चाहे हम अभी भी आरक्षण की राजनीति के जाल डालकर पिछड़ों का शिकार करते हों, पर हम गाँधी को नहीं भूले हैं। ओर इसी पॉलिसी के तहत, गाँधीजी के साथ ही झाड़ा–पोंछा जाता है चरखा और इसी काइयाँ भावना तथा चालाकी के साथ गाँधी–जयंती आदि पर जनता के सामने पेश किया है।

एक दृश्य देखिए।

पार्टी दफ्तर।

गाँधी–जयंती की पूर्वसंध्या पर प्रस्तुत होने वाला रूटीन दृश्य। पार्टी दफ्तर में उपस्थित दो–तीन जन कुछ तलाश कर रहे हैं। खट–पट। उठा–पटक। पर चीज मिल नहीं रही। खोजने वालों में एक वयोवृद्ध व्यक्ति, पार्टी दफ्तर के प्रभारी, चरखा–टाइप व्यक्तित्व, जिसे पार्टी के युवा लोग घूरे पर फेंक देना चाहते हैं परंतु कतिपय व्यावहारिक मजबूरियाँ हैं। उनके साथ एक अधेड़ साथी तथा शेष युवा कार्यकर्ता। सभी लोग कुछ खोज रहे हैं।

''अन्दर देख लो भैया, वहाँ धरा होगा।''

''देख लिया, नहीं है।''

''वहीं तो धर दिया था, पिछली 'जेंती' के बाद, दरी के नीचे।'

''दरी के नीचे तो तिरंगा पड़ा है।''

''उसे भी सँभलकर धर लेना भैया। छब्बीस जनवरी को तिरंगा लगेगा। फिर मौके पर न मिलेगा तो क्या फहराओगे?''

''यार, आपको छब्बीस जनवरी की पड़ी है। अभी कल की तो सोचो। चरखा न मिला, तो गाँधी जेंती पर क्या .... घण्टा चलाओगे....''

''हमने खुद ही धरा था दरी के नीचे, पिछली जेंती के बाद।''

''यार, आप वही–वही बात पेले जा रहे हैं। कौन ले जाएगा यार चरखा? क्या करेगा ले जाकर? आपने ही कहीं और रख दिया होगा।''

''हाँ, इन्होंने ही कहीं और रख दिया होगा। आजकल भूल जाते हैं।''

''बुढ़ापा आ गया, पर कुर्सी नहीं छोड़ते।''

''याद कुछ रहता नहीं, पर दफ्तर इंचार्ज बने रहना...''

''चरखे के बहाने अपनी युवा राजनीति करने का प्रयास न करें कृपया।''

''फिर बताइए न कि कहाँ धरा है चरखा? कल क्या चलाइएगा?''

''आप तो न ही बोलिए। चलाना भी आता है चरखा?''

''आपको ही कौन–सा आता है। आधे घण्टे चलाते हैं, तो बीस मिनट तो सूत में उलझे रहते हैं।''

''देखिए, लड़िए मत। खोजिए।''

तभी एक और युवा कायकर्ता सिगरेट पीकर या शायद गाँजे की चिलम खींचकर अन्दर आता है। वह भी खोजने में सहायता करने लगता है।

''क्या हो गया तिवारी जी?''

''यार, चरखा नहीं मिल रहा।''

''चरखा? यह क्या होता है?''

''यार, होती है एक चीज। लकड़ी की, लम्बी–सी। पहिया–सा लगा होता है। गाँधी जेंती के दिन लगता है।''

''हम खोजें?''

''वह हम तलाश लेंगे। आप तो गाँधीजी की वह बड़ी तस्वीर पीछे गोदाम से निकाल लाइए। पोस्टरों के नीचे दबी पड़ी होगी। उठा लाइए।''

''गाँधी जी?''

''हाँ भाई।''

''ये कौन हैं? हम उनकी तस्वीर कैसे पहचानेंगे? कैसे दिखते हैं?''

''यार, गाँधीजी का ऐसा है कि सर गंजा, हाथ में लाठी...''

तो मित्रों, पार्टी दफ्तर में चरखा तलाशा जा रहा है। वहाँ गाँधीजी को भी खोजा जा रहा है। इस एक अर्थ में दफ्तर तथा देश की स्थिति एक–सी है। यहाँ भी गाँधी को खोजने का नाटक चल रहा है, वर्षों से।

●●●